

पर्यावरण प्रदूषण, कारण और परिणाम

प्रताप सिंह गढ़िया

गिरि विकास अध्ययन संस्थान

सेक्टर ओ, अलीगंज हाउसिंग स्कीम

लखनऊ-226 024

1998

पर्यावरण प्रदूषण, कारण और परिणाम

*डा० प्रताप सिंह गढ़िया

संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में जून 1972 में स्टाकहोम में आयोजित पर्यावरण सम्मेलन ने विश्व के देशों का ध्यान पर्यावरण प्रदूषण से होने वाली समस्याओं की ओर आकर्षित किया। तदनन्तर भारत में भी पर्यावरण असन्तुलन, प्रदूषण तथा उर्जा संकट जैसे शब्द खासे चर्चित और लोकप्रिय हो रहे हैं क्योंकि ज्यों ज्यों मानव जीवन पर्यावरण प्रदूषण से प्रभावित होते जा रहा है त्यों त्यों मानव मस्तिष्क में पर्यावरण के सम्बन्ध में जागृति पैदा होना स्वाभाविक है। हमारी केन्द्र और राज्य सरकारों ने भी पर्यावरण में आ रहे प्रदूषणों को रोकने के लिये अलग विभागों की स्थापना भी कर दी है, इसके साथ साथ माननीय उच्चतम न्यायालय व उच्च न्यायालय भी पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिये जनहित में अपने निर्णय देते रहे हैं। आखिर यह पर्यावरण क्या है? इसके प्रदूषण के क्या कारण हैं? तथा उसका मानव जीवन पर क्या-क्या प्रभाव पड़ रहा है? को जानना भी साधारण जनमानस के लिये उपयोगी होगा।

पर्यावरण की अवधारणा

हमारा भौतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक जगत मिलकर हमारे पर्यावरण का निर्माण करता है, जल, तालाब मिट्टी, वायु, पेड़-पौधे, जंगल, जानवर तथा रहन-सहन का स्तर आदि बातें पर्यावरण में निहित हैं। पर्यावरण को हम अलग-अलग टुकड़ों में विभाजित नहीं कर सकते और हमारे

* संकाय सदस्य, गिरि विकास अध्ययन संस्थान, लखनऊ।

चारों तरफ की सम्पूर्णता ही हमारा पर्यावरण है।

मनुष्य के ज्ञानवृद्धि के साथ-साथ विकास की अवस्थाओं में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। प्रारम्भ में मानव आवश्यकतायें मकान, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा सुविधायें, शिक्षा व उत्पादक रोजगार तक ही सीमित थी लेकिन आज समाज में बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये तकनीकी विकास पर जोर दिया जा रहा है, उस तकनीकी विकास द्वारा उत्पादन में वृद्धि हुई है फलस्वरूप वर्ग विशेष के आय व उपभोग के स्तर में वृद्धि होना स्वाभाविक है। परन्तु तकनीकी विकास ने उत्पादन व उपभोग के स्तर में वृद्धि करना ही एक मात्र लक्ष्य मान लिया है और प्राकृतिक असंतुलन को एक सीमा तक नज़रअन्दाज़ कर दिया है। वास्तव में उत्पादकता व उपभोग का "सहउत्पाद" ही आज पर्यावरण प्रदूषण का कारण बनता जा रहा है और यह निश्चित है कि उपभोग व उत्पादन का यह सहउत्पाद या तो मनुष्य के भौतिक साधनों को विपरीत कर देगा या अन्य साधनों के उत्पादन में विपरीत असर डालेगा।

आज उत्तरोत्तर यह महसूस किया जाने लगा है कि विभिन्न राष्ट्रों में भौतिक उन्नति के लिये जो अन्याधुन्य होड़ लगी हुई है उससे पूरे विश्व के पर्यावरणीय संतुलन पर कुप्रभाव पड़ा है। आज विश्व के कृषि प्रधान देश औद्योगिक देशों की तुलना में कम प्रदूषित है। दूसरे शब्दों में औद्योगीकरण, शहरीकरण व कृषि का आधुनिकीकरण गरीब देशों में कम होने से सम्पन्न देशों की तुलना में ये देश कम प्रभावित हैं।

भारत में पर्यावरण प्रदूषण की अवधारणा-

भारत में पर्यावरण प्रदूषण विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है जिसमें उपजाऊ मिट्टी का तेजी से बहाव व कटाव, गंगा-यमुना व अन्य जल स्रोतों जैसे कुँओं, तालाबों व नहरों का जल दूषित होना,

सिंचाई व विद्युत उत्पादन की विशालकाय परियोजनाओं के लिये बने विराट बंधों द्वारा सम्भावित खतरा, औद्योगीकरण व उसके रासायनिक दूषपरिणाम, बढ़ते हुए यातायात व शहरीकरण के पर्यावरणीय खतरे तथा वनों का अन्धाधुन्ध कटान आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन सब तथाकथित विकास के चरणों का शिकार सबसे अधिक कोई नहीं बल्कि मानव स्वयं है उसमें आज तेजी से विकास करने की दिशा में अपने चारों ओर प्रदूषण का ताना बाना बुन लिया है।

आज जब कभी भी पर्यावरण प्रदूषण की चर्चा की जाती है, स्वभाविक रूप से उसमें पर्यावरण की भौतिक विकृतियों के साथ ही साथ मानवीय विकृतियों को भी सम्मिलित किया जाता है। जहाँ भौतिक विकृतियों के कारण व निदान उनके मुख्य स्रोत में निहित है वहीं मानवीय विकृतियों घूरे सामाजिक व आर्थिक कारणों द्वारा उत्पन्न होती हैं।

भारत में पर्यावरण प्रदूषण वर्तमान परिपेक्ष्य में एक चर्चित विषय हो गया है और पर्यावरण प्रदूषण के सम्भावित खतरों पर कई राष्ट्रीय व क्षेत्रीय गोष्ठियों, साहित्य सृजन व शोध कार्य निरन्तर जारी है लेकिन जिस तरह हमारे देश की भाषा, संस्कृति, सभ्यता व विकास के चरण विभिन्न भागों में अलग-अलग है उसी तरह पर्यावरण प्रदूषण की समस्याएँ भी क्षेत्र विशेष में अलग-अलग स्वरूप धारण किये हुए हैं। प्रस्तुत लेख में पर्यावरण प्रदूषण को उत्तर प्रदेश के पर्वतीय अंचल के सन्दर्भ में देखने का प्रयास किया गया है। लेख की विषयवस्तु के अन्तर्गत पर्यावरणीय असंतुलन के लिये जिम्मेदार कारणों का विश्लेषण व समीक्षा की गयी है तथा लेख पर्यावरण पर उपलब्ध साहित्य तथा क्षेत्रीय पर्यवेक्षण पर आधारित है और पर्वतीय समाज जिस पर्यावरणीय ज्वलन्त समस्या को देख, सुन और अनुभव कर सकता है, को यथावत सूचनात्मक एवं व्याख्यात्मक रूप में, इस लेख में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

पर्यावरण प्रदूषण के कारक

1. मादक-द्रव्यों का प्रयोग

शराब जिसे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी सारे व्याभिचारों की जननी कहते थे ने उत्तर प्रदेश के पर्वतीय अंचल में सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी भयावह स्थितियाँ पैदा कर दी है कि नैसर्गिक शान्ति के लिये याद किया जाने वाला सम्पूर्ण उत्तराखण्ड नारकीय कष्टों और त्रासदियों का पर्याय बन गया है।

सन् 1977 में जब जनता पार्टी सरकार की स्थापना हुई उसी दौरान नशाबंदी का नारा दिया गया और सम्पूर्ण उत्तराखण्ड में नशाबंदी करके - सुरा, अशोका लिक्विड, पुदीन हरा, अल्काटोन टिन्जर-जिन्जर व अनेक अल्कोहलयुक्त नशीली दवाओं के साथ-साथ स्थानीय कच्ची शराब के प्रचलन को न्योता मिल गया और इन दवाओं व कच्ची शराब के प्रयोग ने उत्तराखण्ड के सामाजिक पर्यावरण को इस तरह से प्रदूषित किया कि पारम्परिक मेलों, उत्सवों, त्यौहारों तथा अन्य सांस्कृतिक क्रिया कलापों की जगह खुशी व आनन्द के क्षण-कलह, द्वेष, आपसी झगड़े, तनाव व वैमनस्य में बदलते गये जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक व सामाजिक विघटन की रफतार तीव्रतर होती गयी। शादी जैसे पवित्र बन्धन में बारात जो हमेशा दो दिन की होती थी उसका रूप अब "वन डे" में बदल गया।

अपनी हड्डियों गलाकर पहाड़ की औरत जो भी उत्पादक कार्य जैसे-सब्जी, फल, दूध आदि बेचकर आय का अर्जन करती है वह मेहनत कश औरतों के हाथ में नहीं आता बल्कि पिता, पति, पुत्र भाई व देवर के गले में शराब के रूप में उतरता है और बदले में मिलता है अमानवीय व्यवहार। परिवार के पुरुष सदस्य के द्वारा शराब का सेवन किये जाने के कारण महिलाओं के रोज़मर्रा के कार्यों में दुगुनी वृद्धि और बच्चे अच्छा खाने-पीने, पढ़ने-लिखने और कपड़ों के लिये मोहताज होते जा रहे हैं। कुल

मिलाकर महिलाओं पर अमानवीय व्यवहार, बच्चों की शूलभूत आवश्यकताओं की अनापूर्ति व वृद्धों में बढ़ता संक्रास शराब के ही दुष्परिणाम हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में सैनिक छावनियों व भूतपूर्व सैनिकों के लिये खोले गये शराब के कैन्टीन ने भी शराब को बढ़ावा दिया। यह सर्वविदित तथ्य है कि उत्तराखण्ड के अधिकतर लोगों को सेना में ही रोजगार मिला हुआ है लेकिन 18 से 28 वर्ष सेना में नौकरी करने के बाद जब सैनिक अल्प पेंशन लेकर वापस लौटता है तो उसको स्थानीय परिस्थितियों के साथ समायोजित होने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है और अपनी आर्थिक स्थिति में अधिक सुधार करने के बहाने कैन्टीन से लाये अंग्रेजी शराब की बिक्री करते हैं। आज उत्तराखण्ड में कोई गाँव ऐसा बचा नहीं होगा जहाँ बहुसंख्यक भूतपूर्व सैनिकों द्वारा कैन्टीन से लायी गई शराब न बेची जाती हो।

पाण्डे (1984) ने भी लिखा है कि नैनीताल व रानीखेत क्लब जैसे अंग्रेजी सभ्यता के प्रतीक कई अन्य क्लबों में शहरी व्यापारी, ठेकेदार, वकील व अभियन्ताओं का जमावड़ा बढ़ता जा रहा है। एक जमाने में "इंडियन एण्ड डाग्स आर नॉट एलाउड" लिखा होता था वहीं आज पढ़े-लिखे, बुद्धिजीवियों तथा नवधनाढ्य वर्ग के लोगों के लिये क्लब की सदस्यता और वहाँ जाकर शराब पीना, जुआ खेलना, सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया है।

विकास के अलमबरदारों ने भी कहीं पर्यटन उद्योग को बढ़ावा देने के लिये शराब को एक "फिक्स्ड सेसेट" के रूप में देखा है तो कहीं ग्राम प्रधान, छात्रसंघ, ब्लाक प्रमुख, विधायक व लोक सभा सदस्य ने चुनाव जीतने के लिये एक सुरक्षित हथियार के रूप में। इसके साथ-साथ सरकारी विभागों

द्वारा चलाये गये विभिन्न विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वन में प्रार्थना पत्र जमा करने से लेकर श्रृण स्वीकृत हो जाने तक विभिन्न स्तरों पर अधिकारियों व कर्मचारियों के गलें में सार्वजनिक पैसा शराब के रूप में जाता है और तथाकथित कुछ लाभान्वित परिवार भी शोष धनराशि को मादक द्रव्यों के प्रयोग में लाते हैं।

यद्यपि पिछली दशाब्दि से आज तक के सरकारों ने निगम व निजी ठेकेदारों के माध्यम से उत्तराखण्ड में शराब बिक्री का कार्य कुछ मुख्य शहरों व कस्बों में किया जा रहा है लेकिन वास्तव में देखा जाय तो इन दुकानों के माध्यम से, कच्ची शराब बनाने वालों ने तथा भूतपूर्व सैनिकों ने गाँव के नजदीक के बाजार व दुकानों में शराब की बिक्री करके शराब को उत्तराखण्ड के प्रत्येक गाँव व घर में उपलब्ध करा दिया है। आज छोटा दुकानदार या तो शराब या फिर चरस का धन्या करके अपने व्यवसाय को बनाये हुए हैं।

यद्यपि उत्तराखण्ड में "नशा नहीं रोजगार दो" "दिल्ली हो या उत्तराखण्ड एक ही दुश्मन एक ही जंग" के नारों ने यदा कदा चिपको आन्दोलन के बाद पर्वतीय जनमानस को बढ़ते मादक-द्रव्यों के प्रयोग से सामाजिक, आर्थिक व पर्यावरणीय प्रभावों के प्रति जाग्रत करने की कोशिश की लेकिन आज भी ग्रामीण महिलाओं को यह कहते हुये सुना जाता है कि हमें स्कूल, अस्पताल, सड़क, राशन की दुकान, बिजली व पानी आदि कुछ नहीं चाहिये हो सके तो शराब बन्द करवा दें।

2. वन विनाश

योजना आयोग द्वारा मार्च 1982 में किये गये हिमालय क्षेत्र में पर्यावरण विकास सम्बन्धी एक अध्ययन के अनुसार "हिमालय की पहली और सबसे भयानक समस्या वन विनाश की है।" चिपको

आन्दोलन के जन्मदाता चण्डी प्रसाद भट्ट का भी कहना है कि पर्यावरण की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हिमालय क्षेत्र के वनों का विनाश बड़ा ही दुर्भाग्यपूर्ण है।

वन देश की बहुमूल्य परिसम्पत्ति होने के कारण लोगों को परोक्ष व अपरोक्ष कई लाभ प्रदान करते हैं। आवास, कृषि यंत्रों के निर्माण के लिये काष्ठ, जलौनी लकड़ी, पशुओं के लिये चारा एवं कमरा गर्म करने के लिये लकड़ी, जड़ी बूटियों तथा गोंद आदि के अतिरिक्त अनेक उद्योगों जैसे—कागज, बिरौजा, तारपीन, दियासलाई, कत्था प्लाईवुड, खेलकूद का सामान व फर्नीचर आदि हेतु कच्चा माल भी प्रदान करते हैं। इसके अलावा वन वर्षा के पानी का वेग कम करके जल एवं भूमि संरक्षण का कार्य भी करते हैं। वायु को शुद्ध करने, जलवायु को मृदुल बनाने, बाढ़ एवं सूखे की विभीषिका को कम करने में भी वनों की विशेष भूमिका रही है। वनों में पाये जाने वाले मनोरम पक्षी व जानवर हमारे आनन्द व सफूर्ति के अमूल्य स्रोत हैं। कुल मिलाकर मानव का अस्तित्व, प्रगति एवं समृद्धि काफी हद तक वनों पर निर्भर है। आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है कि वन किसी राष्ट्र के स्वास्थ्य व पर्यावरण के संरक्षण के लिये नितान्त आवश्यक हैं।

वन जो पर्यावरण व स्वास्थ्य के लिये एक परिसम्पत्ति है उनको उत्तराखण्ड में विनाश की ओर ले जाने के लिये कौन से कारक जिम्मेदार रहे हैं? का उल्लेख इस भाग में करना उचित होगा। साधारणतया बढ़ती जनसंख्या, कृषि की न्यून उत्पादकता, रोजगार के साधनों की कमी, पशुपालन को बढ़ावा तथा युवा पुरुष वर्ग द्वारा रोजगार की तलाश में पलायन आदि कारणों से उत्तराखण्ड में सर्वप्रथम सिविल एवं सोयम वनों की विनाश लीला प्रारम्भ हुई आज यद्यपि सरकारी अभिलेखों में सिविल वन विद्यमान हैं लेकिन व्यवहार में शायद ही किसी गाँव में सिविल वन बचे हों। सिविल वनों के विनाश के

लिये गाँव के शक्तिशाली व शिक्षित वर्ग के लोग, प्रवासी व्यक्तियों की महिलायें, 30-35 वर्ष की उम्र में सेना की सेवा से वापस लौटा भूतपूर्व सैनिक, गाँव के वृद्धजन तथा सरकारी कर्मचारियों की उपेक्षा आदि कारक सिविल भूमि में कब्जा कर प्रतियोगिता में आमने सामने खड़े रहे हैं।

सिविल भूमि या वनों में अतिक्रमण करके जहाँ एक ओर वर्तमान समय में अनुत्पादक कृषि की जाने लगी है (पथरीली भूमि, सिंचाई के साधनों का अभाव, पारम्परिक बीज, हल व बैलों से खेत की जुताई की अक्षमता अर्थात् कुदाली व फावड़े की खेती) वहीं दूसरी ओर गाँव के पंचायती वनों में अतिक्रमण की शुरुआत हो चुकी है क्योंकि जहाँ इमारती लकड़ी व जलौनी लकड़ी की आधूर्ति सिविल वनों से होती थी उनके उजड़ने व अतिक्रमण से ग्रसित होने पर स्वाभाविक है लोग पंचायती वनों की ओर अग्रसर होंगे। वर्तमान में उत्तराखण्ड के कई गाँवों में जहाँ अवैध कब्जा करके शक्तिशाली वर्ग के लोगों ने निजी वन बना लिये हैं वहीं गरीब तबके के लोग मकान बनाकर खेती करने लगे हैं। इसके साथ ही साथ सीमावर्ती गाँव के लोगों द्वारा भी आँख मिचौली करके एक-दूसरे के वन पंचायत के वनों को उजाड़ने की प्रवृत्ति भी जारी है।

साधारणतया पर्वतीय अंचल में मई-जून, नवम्बर-दिसम्बर तथा मार्च-अप्रैल में क्रमशः बरसात, जाड़े व गर्मी तथा बरसात के लिये जलाऊ लकड़ी के काटने व एकत्रण का समय है। आज से 15-20 वर्ष पूर्व तक वर्तमान वर्षों से कम लकड़ियाँ जमा की जाती थी लेकिन आज ग्रामवासी जिस परिवार में जिस उम्र के लोग भी घर में मौजूद हैं उसी तरीके से पेड़ पौधों को काटते हैं। महिलाओं पर जलाऊ लकड़ी के एकत्रण का बोझ अधिक होने के कारण उनके द्वारा साधारणतया बुरुस, अड्यारी, किरमड़, व धिंधारू जैसे छोटे-छोटे वनस्पतियों के अलावा बाँज तथा फल्पाठ की टहनियों को काटा जाता रहा है, जो वनस्पतियाँ आज लुप्तप्राय होती जा रही हैं। युवावर्ग भी 10-12 की टोली में

जाकर पंचायती वनों से बड़े बड़े पेड़ों को काटकर ईंधन जमा करते हैं लेकिन वर्तमान में पंचायती वनों में भी बड़े पेड़ों के खतम होने से ईमारती लकड़ी के साथ जलाऊ लकड़ी की समस्या खड़ी हो गयी है। जलौनी लकड़ी के साथ पर्वतीय क्षेत्र में सब्जी (लौकी, तुरई, ककड़ी और छिछिन्डा) के बेल को सहारा देने के लिये प्रति परिवार कम से कम 5-6 चीड़ व अन्य वनस्पतियों के पेड़ प्रति वर्ष काटते हैं इसके साथ जानवरों का चारा इकट्ठा करने के लिये मई जून तथा सितम्बर, अक्टूबर में प्रति परिवार द्वारा 7-8 पेड़ काटे जाते हैं जो पंचायती वनों के विनाश के कारक बनते जा रहे हैं।

वन विभाग के अधीन संरक्षित वनों में चीड़, बांज, देवदार, फर, स्पूस, कैल, साल, टीक, खैर व शीशम आदि के मुख्य वन विद्यमान हैं लेकिन अंग्रेजी शासन काल से लीसा व रेलवे स्लीपर बनाने के लिये इन वनों का विद्रोहन किया जाता रहा है। आज वन सम्पदा के विद्रोहन की विडम्बना यह है कि जहाँ वनों से प्राप्त अपार सम्पत्ति का लाभ उन लोगों को हो रहा है जिनका पर्वतीय अंचल से कोई सम्बन्ध नहीं है लेकिन वनों के विनाश द्वारा उत्पन्न पर्यावरणीय खतरों की कीमत पहाड़ के निवासियों को चुकानी पड़ती है। एक भ्रामक तथ्य यह भी है कि पर्वतीय अंचल में प्रति व्यक्ति आय मैदानी क्षेत्रों की तुलना में अधिक है यदि वनों से प्राप्त आय को समग्र आय में से अलग कर दिया जाय तो (वस्तुतः वनों से प्राप्त ~~अल्प~~ पहाड़वासियों को प्राप्त नहीं होती) वस्तुस्थिति सामने आ जायेगी।

जहाँ सरकार द्वारा वैधानिक रूप से वनों की कटाई की जा रही है वहीं स्थानीय लोगों द्वारा पशुचारण के द्वारा वनों का विनाश होना स्वाभाविक है क्योंकि पर्वतीय क्षेत्र में चारागाहों में अतिक्रमण होने के बाद सरकारी वन ही विकल्प रह गये हैं। जानवरों के चरने से जहाँ नये उगने वाले पौधों को चर लिया जाता है वहीं जानवरों के चलने से मिट्टी सख्त हो जाती है जिससे नये पौधों का उगना

बन्द हो जाता है। बरसात के मौसम से पूर्व चरवाहे भी अच्छी घास की उपलब्धता के लिये जंगलों में आग लगाते रहते हैं।

देश का सीमान्त क्षेत्र होने के कारण सन् 1962 के भारत चीन-युद्ध के समय सीमान्त जिलों में सुरक्षा की दृष्टि से पहुँचने के लिये कई सड़कें बनायी गयी जिसमें कई घने-घने जंगल धराशापी हो गये आज इन सड़कों के माध्यम से मोटर मालिक व वनमाफिया जंगलों से चोरी-छिपे लकड़ी काटकर मुनाफा कमा रहे हैं। पर्यटक व तीर्थस्थल होने के कारण उत्तराखण्ड में इनका बोझ प्रतिवर्ष बढ़ते जा रहा है इन पर्यटकों के भोजन आदि की व्यवस्था के लिये भी वनों का कटान होता रहा है।

पर्वतीय क्षेत्र में ग्रामवासियों के वनों में जो हक-हकूक है उनसे भी एक तरफ जहाँ वनों का विनाश हो रहा है वहीं भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा मिल रहा है। यद्यपि हक-हकूक के पेड़ उन ग्रामवासियों को दिये जाने का प्रविधान है जिनके नये मकान लगे होते हैं या मकान की मरम्मत करनी होती है लेकिन व्यवहार में ग्राम प्रधान व सरपंच या गांव के शक्तिशाली वर्ग ही इसका फायदा उठाते हैं। हक-हकूक के पेड़ों का गांव वालों को देने के बहाने सरकारी कर्मचारियों के हाथ में छपान वाला घन आता है तो वे स्वलाभ के लिये कई कच्चे पेड़ों पर घन लगाकर ग्रामवासियों को दे देते हैं जिस लकड़ी की लोग बिक्री भी करते हैं।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि निजी व्यापारिक व सार्वजनिक रूप से पर्वतीय क्षेत्र के वनों का विदोहन जारी है। वनों के विनाश से होने वाले खतरों को वैज्ञानिक व सामाजिक कार्यकर्ता

उजागर करते रहे हैं। भू-वैज्ञानिक डा० वल्लभ्या (1986) दैनिक "स्वतंत्र भारत" में आशंका व्यक्त की थी कि हिमालय क्षेत्र में वनों की अन्याधुन्य कटाई और उसके निचले इलाकों में लगातार बढ़ रही जनसंख्या व मवेशियों की संख्या को नियंत्रित नहीं किया गया तो सन् 2031 तक हरे-भरे पहाड़ नंगे हो जायेंगे तथा खेत व पर्वत श्रृंखलाएँ रेगिस्तान बन जायेंगे।

3. बाढ़ व भूस्खलन-

वर्षों से मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ आना एक स्थायी समस्या बनी हुई है लेकिन पहाड़ों में बाढ़ आना और भी गम्भीर समस्या है। यद्यपि मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ आने से भूमि नष्ट नहीं होती, केवल खड़ी फसल को नुकसान होता है। गाढ़ के फूलने से खेतों की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है लेकिन पहाड़ों में बाढ़ व भूस्खलन के कारण भूमि हमेशा के लिये नष्ट हो जाती है और प्रभावित परिवारों को विस्थापित करना एक विशाल समस्या बन जाती है। यद्यपि बाढ़ व भूस्खलन से कितना नुकसान होता है? को मापना कठिन व दुष्कर कार्य है लेकिन बरसात के मौसम में जगह-जगह धंसे पहाड़ अपनी करुण कहानी स्पष्ट दर्शाते हैं। मिट्टी के रंग के अनुसार बरसात में भूस्खलन व कटाव से हरे भरे पर्वतीय भू-भाग विभिन्न रंगों में रंगे हुए जैसे लगने लगते हैं।

बाढ़ व वनों की समस्या जो कि वनों के विनाश के कारण बढ़ती जा रही है, से जान माल की जो क्षति हो चुकी है उससे पर्वत जनों का भयाक्रान्त होना स्वाभाविक है। पिछले कुछ वर्षों के आंकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि सन् 1972 में अलकनन्दा में आयी बाढ़ से 21 यात्री लापता, 25 व्यक्तियों की मृत्यु, 25 पशुओं की मृत्यु, 132 मकान व दुकान जो कि बाढ़ में बह गये, 17 गौशालायें, 17 पनचक्कियाँ, 5 मंदिर और लगभग 25 लाख रुपये की निजी सम्पत्ति की क्षति हुई थी। अगस्त 14, 1977 में पिथौरागढ़ व तवाघाट में भूस्खलन से 45 व्यक्तियों की मृत्यु तथा लाखों रुपये

की सम्पत्ति नष्ट हुई थी। अगस्त 1978 में उत्तरकाशी में आयी बाढ़ से लगभग 30 करोड़ रुपये की क्षति हुई थी तथा भागीरथी का तल 10 से 30 फुट तक ऊँचा उठ गया था। सन् 1979 में कोयना (चमौली) में आयी बाढ़ व भूस्खलन ने 39 व्यक्तियों की मृत्यु 118 मकान व 75 गौशालायें ध्वस्त तथा 100 पशुओं की मृत्यु हुई थी इस विनाशालीला से 20 गांव प्रभावित हुए थे। इसी वर्ष 14 अगस्त 1979 को तवाघाट (पिथौरागढ़) में आयी बाढ़ व भूस्खलन के कारण 15 व्यक्ति व 46 पशु मरे थे तथा जिला अल्मोड़ा के ग्राम-रिखाड़ी (मुनार) में 7 व्यक्तियों की मृत्यु व 2 मकान क्षतिग्रस्त हुए थे।

सन् 1980 में ज्ञानलू (उत्तरकाशी) में हुए भूस्खलन से 50 लोगों की मृत्यु तथा 3 मकान दब गये व 18 पक्के मकान क्षतिग्रस्त हुए थे। सन् 1981 में अल्मोड़ा जनपद के बघर गाँव में बाढ़ व भूस्खलन से 6 व्यक्तियों व 15 मवेशियों की मृत्यु तथा 3 मकान धाराशायी हुए थे। जुलाई 22, 1982 को अल्मोड़ा जिले के कर्मी गाँव में आई बाढ़ व भूस्खलन से 30 व्यक्तियों व 106 पशुओं की मृत्यु के साथ-साथ 8 पुल, 17 घराट (पनचक्कियाँ) तथा सैकड़ों रकड़ उपजाऊ ज़मीन नष्ट हो गयी थी। सन् 1983 में धाम पिथौरागढ़ में भूस्खलन से 10 व्यक्ति व 10 पशु मरे थे। जून 29, 1984 में नैनीताल जिले के गरमपानी में 4 बच्चों की मृत्यु तथा एक पक्का मकान ध्वस्त हो गया था इसी वर्ष अगस्त में टिहरी जिले के कदतू गाँव में 7 लोग वर्षा व भूस्खलन से मरे थे। इसी वर्ष अल्मोड़ा के जगथाना (बागेश्वर) व नैनीताल जिले के कूण गाँव में क्रमशः 10 व 4 लोगों की बाढ़ से व भूस्खलन से मृत्यु हुई थी।

बाढ़ व भूस्खलन वास्तव में वनों के अन्यायुन्ध कटाई का ही दुष्परिणाम है और वनों के कटान का अप्रत्यक्ष प्रभाव हिमालय क्षेत्र से निकलने वाली नदियों के जल की मात्रा पर पड़ता है। नदियों के

बहाव में भारी असंतुलन आने से नदियाँ विकराल रूप लेकर अपनी दिशा बदल कर भूमिकटाव व जानमाल का नुकसान कर देती हैं। सड़कों को गलत सर्वेक्षण के आधार पर बनाने से भी भूस्खलन को बढ़ावा मिला है।

4. खनन-

बढ़ती जनसंख्या व तकनीकी विकास ने आय के नये स्रोतों की खोज में हिमालय को खोखला कर दिया है। प्राकृतिक संसाधनों व सम्पदाओं से परिपूर्ण उत्तराखण्ड के खान सम्पदाओं के शोषण के लिये ऐसा महसूस होता है कि रोजगार की दुहाई देने वाली लोकप्रिय सरकार पर्वतीय क्षेत्र की खनिज सम्पदा का इस तरीके से विद्रोहन करा रही है जैसे कि पर्वतीय क्षेत्र मानव रहित है। पर्वतीय क्षेत्र में सर्वप्रथम झिरौली मैग्नेसाइट (अल्मोड़ा) तथा उड़ीसा मैग्नेसाइट इण्डस्ट्री चण्डाक (पिथौरागढ़) दो खाने लगायी गयी चूँकि चण्डाक की खान अधिक ऊँचाई पर होने तथा डायनामाइटों के विस्फोटों के कारण वहाँ के जल स्रोत भूमिगत हो चुके हैं तथा पर्यावरण की दृष्टि से पपदेव, बजेठी, छानाढुगा व चण्डाक क्षेत्र में जनजीवन प्रभावित हो रहा है।

खनन का कार्य लीज के माध्यम से निजी ठेकेदारों द्वारा किया जाता रहा है जो कि एक ही रात में करोड़पति बनने का सपना देखकर उत्तराखण्ड की तरफ बढ़ रहे हैं। पहाड़ों की रानी के नाम से प्रसिद्ध "मंसूरी" में सर्वप्रथम चूने के पत्थरों के खनन का कार्य किया गया स्थानीय लोगों व समाजसेवी संगठनों के विरोध के बावजूद यहां के खनन कार्य ने मंसूरी का पर्यावरण संतुलन बिगाड़ दिया। जनविरोध के कारण माननीय उच्चतम न्यायालय ने सर्वप्रथम 60 खानों में से 50 खानों के लाइसेन्स के नवीनीकरण पर रोक लगा दी और भारत सरकार ने भी खनन से होने वाले पर्यावरण प्रदूषण को ध्यान में रखते हुए यहां के सभी खानों को बन्द करवा दिया।

अस्सी के दशक में बड़े औद्योगिक शहरों के पूँजीपतियों का ध्यान खड़िया (सोपस्टोन) खनन की ओर आकर्षित हुआ निजी ठेकेदारों को खड़िया खनन के लिये लीज पट्टे दिये गये और बेनाप भूमि व वन भूमि में खड़िया खनन का कार्य जारी रहा। यद्यपि पर्यावरण की दृष्टि से स्थानीय लोगों का एक वर्ग खनन का विरोध करता रहा लेकिन एक वर्ग रोजगार एवं अन्य स्वलाभ के लिये बाहरी व निजी ठेकेदारों से मिलकर कन्थें से कन्था मिलाकर खनन कार्य में सहयोग देता रहा और स्वयं पूँजीपतियों के मुंशी के तौर पर कार्य करने लगे। चूँकि पूँजीपतियों व निजी ठेकेदारों के लिये कार्य करने वाले व्यक्ति छल-कपट व अपने मालिक को धोखा देकर दिन दूने और रात चौगुने के हिसाब से मालामाल होने की कोशिश करने लगे व उन्हें सफलता भी मिली धीरे-धीरे पूँजीपति व निजी ठेकेदारों को इनकी करतूतों का पता चला तो इन ठेकेदार और मुंशी वर्ग में तनाव की स्थिति पैदा हो गई और शान्तिप्रिय उत्तराखण्ड में कट्टा, पिस्तौल व बन्दूक का खौफ पैदा हो गया और स्थानीय जनता मूकदर्शक बनकर रह गयी है।

सन् 1980 के दशक के बाद खड़िया खनन से अल्मोड़ा जनपद का बागेश्वर तहसील (जो वर्तमान में अलग जिला बन गया है) सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। सन् 1983 में उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध पर्यटन स्थल पिण्डारी ग्लेसियर के ट्रैकिंग रूट चौड़ास्थल जो कि 7000 फुट की ऊँचाई पर स्थित है में खड़िया खनन की लीज दी गयी उसी के साथ-साथ विकास खण्ड कपकोट के ग्राम रीमा बसकूना व गडेरा तथा विकास खण्ड बागेश्वर के काण्डा व छातीखेत गाँव में खड़िया खान की लीज दी गयी थी ग्राम-गडेरा व चौड़ास्थल के जागरूक नागरिकों द्वारा विरोध करने पर खनन कार्य बन्द हो गया लेकिन बसकूना, रीमा, छाती खेत व काण्डा में खनन कार्य सन् 1995 तक बसतूर जारी रहा। सन् 1996-97 में माननीय उच्चतम न्यायालय के द्वारा जनहित व पर्यावरण के बचाव हेतु सरकारी वन व

सिविल भूमि में खनन पर पूर्णतया रोक लगा दी लेकिन नाप भूमि में खनन नहीं रोका गया।

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा नाप भूमि में खनन कार्य न रोकने की वजह से जहाँ पुराने निजी ठेकेदार अपनी पुरानी लीज वाली जगह से खनन कार्य जारी रखें हैं वहीं नये नये लीजधारी बनकर वर्तमान समय में जनपद बागेश्वर के डफौट, काण्डा, तुपेड़, रीमा, उड़्यार, मैठारा, रतयास, करौली बसकूना, तीख, पपोली तथा कीड़ई पचार में नाप भूमि का बहाना बनाकर नाप बेनाप भूमि में अन्याधुन्य खड़िया खनन कार्य जारी रखे है। यद्यपि कुछ खड़िया खनन माफियाओं के पास लीज पट्टे है लेकिन कुछ अपने को जिला प्रशासन की घूजा करने पर ही लीजधारी बन बैठे हैं।

वर्तमान समय में खड़िया खनन का यह आलम है कि तथाकथित लीजधारी सीडीनुमा खेतों को ऊपर के खेत में खड़िया निकाल रहे हैं तो निचले खेत वाले कृषक के द्वारा विरोध करने पर उसको गोली से उड़ा देने की धमकी देकर घूरे जिले में दहशत पैदा की जा रही है। अपनी राजनैतिक पहुँच व अवैध हथियारों तथा शासन व प्रशासन की अक्षमता व मिलीभगत के कारण आज आम नागरिक मनोवैज्ञानिक दबाव में जीने को मजबूर है। आज न माननीय उच्चतम न्यायालय के आदेशों का पालन किया जा रहा है और न ही कोई खनन से पीड़ित होने वाले कृषक परिवारों की बात सुनने वाला है।

कृषक परिवारों द्वारा स्वेच्छा से या दबाव के कारण अपने नाप खेतों से खड़िया निकालने पर खेतों में गहरे गड्डे ही गड्डे दिख रहे है तथा खनन के कारण उनके भूमिहीन होने की नौबत आ चुकी है। दूसरी तरफ खनन से जो भी आय प्राप्त हुई है उसका उपभोग घड़ले से उपलब्ध मादक पदार्थों में किया जा रहा है। परिणामस्वरूप अब कृषक परिवारों के पास न जमीन रही और न ही खनन से

अर्जित आय वरन् ये सीमान्त व लघु कृषक अन्यत्र रोजगार के अभाव में भूखमरी के कगार पर हैं।

यह सच है कि पहाड़ में अनेक खनिज पदार्थ हैं लेकिन उनका दोहन खनन द्वारा किस सीमा तक सम्भव है? क्या खनन द्वारा प्राप्त आर्थिक लाभ खनन द्वारा उत्पन्न पर्यावरणीय खतरों की कीमत से अधिक है? क्या खनन के आर्थिक लाभ उन लोगों को मिलते हैं जो खनन के खतरे को झेलते हैं? क्या खनन क्षेत्रों से विस्थापित लोगों का आर्थिक व सामाजिक लाभ बरकरार रहता है? आदि अनेक प्रश्न हैं जो अभी तक अनुत्तरित हैं और इस तथ्य को उजागर करते हैं कि सरकार की खनन के सम्बन्ध में स्पष्ट नीति होनी चाहिये और खनन वाले क्षेत्रों का निर्धारण किया जाय जहाँ कि खनन कार्य किया जा सके, साथ ही साथ पर्यावरण सम्बन्धी खतरों के लिये सरकार क्या कदम उठायेगी? आदि बातें भी स्पष्ट होनी चाहिये।

5. बॉध

शुष्मिकेष्ट से लगभग 80 किलोमीटर उत्तर में भागीरथी और भिलंगना के मिलन स्थान से 1.5 किमी० नीचे टिहरी बॉध का निर्माण किया जा रहा है, जो एक चट्टानी बॉध है। यह बॉध 260.5 मीटर ऊँचा होगा और बॉध का निर्माण का लक्ष्य 2000 मेगावाट पनबिजली व 66800 हैक्टर जमीन की सिंचाई करना है लेकिन भूगर्भ वैज्ञानिकों व पर्यावरणविदों का मत है कि इस बॉध का आकार व स्थान ठीक नहीं है क्योंकि बॉध भूकम्प की सक्रीयता वाले स्थान पर बन रहा है इसलिये भूकम्प बॉध के कारण कभी भी भूकम्प आ सकता है।

टिहरी बांध यद्यपि सिंचाई व विद्युत उत्पादन में वृद्धि हाइड्रो प्रोजेक्ट की स्थापना, मत्स्य पालन, पर्यटन उद्योग का विकास, बाढ़ नियंत्रण एवं कुछ लोगों को रोजगार के अवसर अवश्य प्रदान कर रहा है लेकिन इस परियोजना के निर्माण से टिहरी नगर सहित 105 गाँव प्रभावित होंगे जिसमें 33 गाँव पूर्णतया व 72 गाँव आंशिक रूप से प्रभावित होंगे। चौहान व पाण्डेय (1985) ने भी लिखा है कि बांध निर्माण से टिहरी शहर के 2000 परिवार तथा 4600 ग्रामीण परिवारों के पुर्नवास की व्यवस्था सरकार को करनी होगी वर्तमान समय में लगभग 37000 लोगों के स्थान परिवर्तन से टिहरी जिले की सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पहलुओं में बदलाव आयेगा।

इस बांध के निर्माण के फलस्वरूप जहाँ 32000 लोगों के सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक पहलू प्रभावित होंगे वहीं पुर्नवासित व्यक्तियों व बांध के निर्माण में लगे लोगों द्वारा अन्याधुन्य वन कटान किया जाने लगेगा। साथ ही भू-वैज्ञानिकों द्वारा बांध के निर्माण स्थल को अनुपयुक्त बताकर भविष्य में टूटने से मैदानी क्षेत्रों में होने वाले नुकसान को भी नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है क्योंकि जो बांध निर्माण वर्तमान में पर्वतीय क्षेत्र से पर्यावरण को प्रभावित कर रहा है भविष्य में मैदानी क्षेत्रों में भी पर्यावरणीय दुष्परिणामों को नकारा नहीं जा सकता है।

6. मिट्टी

भूमि और सभ्यता साथ-साथ चलती है। जिन देशों ने भूमि की उपेक्षा की वे विकास की दौड़ में पिछड़ जायेंगे। लगभग 2300 वर्ष पूर्व अरस्तू ने कहा था कि "भूमि पेड़ पौधों का पेट है" अगर हम पेड़ पौधों पर चोट करेंगे तो स्वाभाविक है मनुष्य के पेट पर चोट होगी। आज राष्ट्रीय सेना एक इंच भूमि के लिये लड़ने को हमेशा तैयार रहती है लेकिन हवा व पानी के झोंकों व बाढ़ से अत्यधिक उपजाऊ भूमि के बह जाने या बर्बाद होन पर कोई भी एक आँतू बहाने वाला नहीं।

बाहरवें इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ सोइस साइंस में के.जी. तेजवानी (1982) ने अनुमान लगाया था कि देश की 56 प्रतिशत कृषि भूमि, 75 प्रतिशत परती भूमि, 86 प्रतिशत कृषि योग्य भूमि, 95 प्रतिशत चारागाह तथा कम से कम 33 प्रतिशत वन क्षेत्र वाली भूमि, भूमि कटाव से प्रभावित है। उत्तराखण्ड में भी हिमालय से निकलने वाली नदियों में आने वाली बाढ़ से नदी किनारे की मिट्टी प्रतिवर्ष बर्बाद व नष्ट हो रही है वहीं वनों के कटान से प्रतिवर्ष भू-स्खलन से सैकड़ों एकड़ भूमि की उपजाऊ मिट्टी नदियों में समा रही है। भूमि प्रकृति का एक स्थिर साधन होने के कारण कालान्तर में भूमि जोत घटती जायेगी वहीं वन विनाश, पशुओं को चराने में भूमि पर बढ़ने वाले भार से भूमि कटाव को प्रोत्साहन मिलता रहेगा इसके साथ-साथ विकास के दौड़ ने प्लास्टिक की थैलियों का जो अविष्कार किया उनसे भी पहाड़ के छोटे-छोटे खेतों में गोबर के साथ-साथ प्लास्टिक की थैलियां पहुँचने से बीज मिट्टी में न जाकर थैलियों के ऊपर रहता है जिससे स्वाभाविक रूप से अनाज उत्पादन व उत्पादकता पर प्रभाव पड़ेगा इसके अलावा स्थानीय कृषकों को रासायनिक खादों के उपयोग के सम्बन्ध में उचित प्रशिक्षण की सुविधा न होने से मिट्टी की उर्वराशक्ति प्रभावित हो रही है।

28318

निष्कर्ष व सुझाव

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पर्यावरणीय असंतुलन के दुष्परिणाम भयावह होंगे और समय रहते मानव ने पर्यावरण को साथ लेकर चलना नहीं सीखा तो एक दिन प्रकृति अपना वीभत्स रूप दिखाकर मानवता को निगल सकती है। आज मनुष्य अपने उद्देश्य सिद्धि कि लिये अल्पकालीन दृष्टिकोण रखता है और दूरगामी परिणामों से बेखबर रहता है। पर्यावरण असंतुलन द्वारा जनित दुष्परिणामों के बारे में आज जनसंख्या का बहुत बड़ा तबका, विशेषकर ग्रामीण समाज कुछ जानता ही नहीं है।

वर्तमान समय में पर्वतीय क्षेत्रों में अतिरिचित भूमि में रासायनिक उर्वरकों के उपयोग से मिट्टी व उत्पादन पर पड़ने वाले दुष्परिणामों की चिन्ता हमारे विकास अधिकारियों को नहीं है। मादक-द्रव्यों के उपयोग होने वाले नुकसान की ओर सरकार का तनिक भी ध्यान नहीं है, मात्र अधिक कर वसूली ही सरकार का लक्ष्य बन गया है। खनन के दीर्घकालीन नुकसान भविष्य में बनने वाले उत्तराखण्ड के लिये अभिशाप सिद्ध होगा क्योंकि भ्रष्टाचार से मुक्त व समग्र विकास की भावना से अलग राज्य की मांग की जा रही है लेकिन सत्ता पर खनन व वन माफियाओं का शासन होगा। आज आवश्यकता विकास के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, प्राकृतिक व पर्यावरणीय पहलुओं को समान रूप से देखने की है। विकास को हम सिर्फ आर्थिक विकास के रूप में न देखें और अल्पकालीन आर्थिक लाभों को न देखते हुए दीर्घकालीन लाभों को समझें। अतः उत्तर प्रदेश के पर्वतीय अंचल में हो रहे पर्यावरण प्रदूषण व असंतुलन को दूर करने के लिये समग्र रूप में विचार करने की आवश्यकता है। इस भाग में पर्यावरण सुधार हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

(1) वनों के कटान से होने वाले पर्यावरणीय असंतुलन को सरकार व्यावहारिकता में समझे और उसकी हानियों को जनता के सम्मुख उजागर करे, स्थानीय जनता को ईंधन के विवेकपूर्ण प्रयोग के बारे में बताया जाय, विशेषकर पर्वतीय क्षेत्र की महिलाओं को इस कार्य के लिये जागरूक किया जाय।

(2) आजादी के 50 वर्ष बीत चुके हैं अभी तक जो कागजी वनीकरण हो रहा है उसको व्यावहारिक वनीकरण में बदला जाय इसके लिये सर्वप्रथम ग्राम सभा की सिविल भूमि में किये गये अतिक्रमण को हटाना होगा तभी उसमें वनीकरण सम्भव है। वनीकरण के कार्य में ग्रामवासियों को सम्मिलित किया जाय न कि नेपाली मजदूरों को।

(3) वनीकरण को सफल बनाने के लिये लोगों को जहाँ-तहाँ बंजर भूमि को कृषि भूमि में बदलने से रोका जाय साथ ही निर्वाध पशुचारण को भी रोका जाय जिससे भूमि कटाव व धँसाव न हो।

(4) जंगलों के कटान को रोकने के लिये कठोर विधि व्यवस्था हो और सड़कों के निर्माण में डायनामाइटों का प्रयोग पूर्णतः बन्द किया जाय इसके लिये निजी ठेकेदारों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक होगा।

(5) ईंधन की आपूर्ति के लिये वैकल्पिक उर्जा व लघु पन बिजली योजनाओं को महत्त्व देना चाहिये क्योंकि लघु पन बिजली पैदा करने की पर्वतीय क्षेत्र में अपार सम्भावनाएं हैं और स्थानीय लोगों को सस्ती दर पर भोजन व ठण्डे मौसम में कमरा गरम करने के लिये बिजली उपलब्ध हो सके जिससे वनों का कटान अवश्य रुकेगा।

(6) मादक-द्रव्यों के रोकथाम के लिये सरकार को दुर्लभ नीति से बाहर आना होगा क्योंकि जहाँ एक ओर आबकारी विभाग शराब का प्रचार व प्रसार करता है वहीं मद्यनिषेध विभाग मद्यपान रोकने का प्रचार करता है। भूतपूर्व सैनिकों को भी कैन्टीनों के माध्यम से मिलने वाली शराब की बिक्री पर रोक लगानी चाहिये तथा अवैध रूप से शराब बनाने व उनको प्रोत्साहित करने वाले अधिकारियों को सख्त से सख्त सजा मिलनी चाहिये।

(7) यह सभी स्वीकार करने लगे हैं कि पर्वतीय क्षेत्र में कृषि अनर्थिक सिद्ध हुई है और पशुपालन घटिया नस्ल के पशुओं के चारे की कमी से प्रभावित है। अतः कृषि के स्थान पर बागवानी को प्रोत्साहित किया जाय तथा उसके लिये उचित मूल्य व बाजार आदि की व्यवस्था हो।

(8) स्थानीय लोगों का घर व गोशाला अलग-अलग बनाने का सुझाव देना चाहिये साथ ही घटिया नस्ल के पशुओं की संख्या में कमी लाने को प्रोत्साहित करना चाहिये।

(9) पहाड़ों में खनन के सम्बन्ध में सरकार एक साफ सुथरी नीति बनाये व खनन का लाइसेन्स या लीज पट्टा देने से पूर्व उसके पर्यावरणीय पहलुओं पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें। वर्तमान लीज व लाइसेन्स देने का तरीका पहाड़ों को उजाड़ने में सहायक सिद्ध हो रहा है अतः इस नीति को अवश्य बदला जाना चाहिये। तभी विनाश के बिना विकास की परिकल्पना पूर्ण होगी।

सन्दर्भ

1. बी.पी.पाल-इन्वार्नमेन्ट कन्जर्वेशन एण्ड डेवलपमेन्ट, नटराज प्रकाशन, देहरादून, 1982.
2. गणेश उपाध्याय- पर्यावरण चेतना, मासिक पत्रिका "तराण" जून, 1983.
3. मुस्तफा, कमाल टोल्वा- डैवलपमेन्ट विदाउट डैस्ट्रक्शन, टेकुली इंटरनेशनल पब्लिशिंग लि0 वर्लिन, 1982.
4. महेश पाण्डे- उत्तराखण्ड में शराब नहीं रोजगार दो आन्दोलन, अमृत प्रभात, साप्ताहिक परिशिष्ट, जुलाय 8, 1984.
5. वन सांख्यिकी, उत्तर प्रदेश वन संरक्षक अनुसन्धान एवं विकास वृत्त, उत्तर प्रदेश, लखनऊ 1983.
6. प्रताप सिंह गढ़िया- वन एवं पर्यावरण, हिमालय निवासी और निसर्ग, वर्ष 8, अंक 4, सितम्बर, 1984.
7. स्वतंत्र भारत, 10 अप्रैल 1986.
8. सरला देवी- संरक्षण या विनाश, ज्ञानोदय प्रकाशन, हल्द्वानी
9. साप्ताहिक नैनीताल समाचार वर्ष 9, अंक 24, 1 से 14 अगस्त, 1986.
10. तराण, स्वाधीनता विशेषांक, 17 अगस्त से 16 सितम्बर, 1983 और नवभारत टाइम्स, 6 सितम्बर, 1986.
11. एस.पी.वलोनी- हिमालय क्षेत्रों में वन विनाश, हिमालय निवासी और निसर्ग, अंक 5, अक्टूबर, 1985.
12. अनुपम मिश्रा, ति0 न0 अक्षेय- देश का पर्यावरण, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।

13. हरिभजन सिंह चौहान एवं एच० पी० पाण्डेय, टिहरी बांध परियोजना- आर्थिक दृष्टिकोण, हिमालय निवासी और निसर्ग, वर्ष 8, अंक 8, जनवरी, 1985.
14. द स्टेट्स ऑफ इण्डियाज इन्वैमेन्ट, ए सिटीजन रिपोर्ट, सेंटर फार साइन्स एण्ड इन्वैमेन्ट नई दिल्ली, 1987.
15. एन० एल० रामनाथन एण्ड देशबन्धु, एजुकेशन फार इन्वार्नमेन्टल प्लानिंग एण्ड कन्जर्वेशन, नटराज प्रकाशन, देहरादून, 1982.
16. नेशनल सोइल पालिसी फार इण्डिया, पेपर फार 12 इन्टरनेशनल कांग्रेस ऑफ सोइल साइन्स, दिल्ली 8-16 फरवरी, 1982.